कर्बला की घटना

लेखकः प्रोफ़ेसर सय्यद मसऊद हसन रिज़वी साहब
अनुवादः पंडित चन्द्रिका प्रसाद 'जिज्ञासु' लखनऊ

गाह - गाहे बाज़ख़्वाँ ईं दफ़्तरे पारीना रा।
ताज़ाख़्वाही दाश्तन गर दाग़हाये सीना रा।।

अर्थ- अगर तुम चाहते हो कि तुम्हारे दिल के दाग़ या हृदय के घाव हरें रहें, तो इस पुरानी कहानी को कभी कभी पढ़ लिया करो।

अरब में क़ुरैश का घराना अपनी कुलीनता और सज्जनता की दृष्टि से अत्यन्त प्रतिष्ठित था। काबा, जो इस्लाम से बहुत-बहुत पहले भी अरब का धार्मिकता व पवित्रता का सबसे बड़ा केन्द्र था, उसके अधिष्ठाता होने का गर्व भी इसी घराने को प्राप्त था। अपनी विशेष महत्ताओं के फल से यह घराना बहुत काल तक सम्मान के सिंहासन पर शासन करता रहा। अतंतः काल की कुदृष्टि लग गई और ईर्ष्या ने फूट का बीज बो दिया। जब हज़रत हाशिम काबा के अधिष्ठाता हुए, और उनकी सेवाओं ने उन्हें सारे अरब का सेव्य बना दिया, तो उनका अभ्युदय व वैभव उनके भतीजे उमैया की आँखों में खटकने लगा। ईर्ष्यालुओं की उस समय में भी कमी न थी उमैया ने उन्हीं की सहायता से यह प्रयत्न किया कि प्रतिष्ठा व नेतृत्व का मुकुट हज़रत हाशिम के सिर से उतार लें। परंतु विफलताओं ने विरोध की ज्वाला को ठंडा कर दिया। फिर भी हृदयों में यह आग सुलगती रही।

हाशिम के बाद उनके बेटे अब्दुल मुत्तलिब और पोते अबूतालिब काबे के अधिष्ठाता हुऐ हाशिम के स्वभाव और बर्ताव उनको उत्तराधिकार में मिले थे। उन्होंने भी इस सेवा से प्रतिष्ठा लाभ की। उमैया और उसके बेटे हरब ने इन तीनों को भी सम्मान की गद्दी से उताराना चाहा, परन्तु सफलता न हुई। हाँ ईर्ष्या और द्वेष की जड़ें और दृढ़ हो गईं।

जब हाशिम के पर पोते हज़रत मुहम्मद ने अपनी पैग़म्बरी की घोषणा करके मूर्तिपूजा का विरोध और एक-ईश्वरवाद का प्रचार आरम्भ किया, तो उमैया वंशियों को बड़ी आशंका हुई कि यदि जनता ने कहीं हज़रत मुहम्मद को रसूल और उनके पंथ को सच्चा धर्म स्वीकार कर लिया, तो हाशिम वंशियों की धार्मिक शक्तिमत्ता के सामने उमैया वंशियों का प्रदीप ही बुझ जायेगा। अतः उमैया के पोते अबू सुफ़ियान ने मुहम्मदी शिक्षा के विरुद्ध विद्रोह का झंडा ऊँचा किया। बहुत से मूर्ति पूजक इस झंडे के नीचे जमा हो गये, और हज़रत मोहम्मद को सताने व इस्लाम की वृद्धि में रुकावट डालने लगे। यहाँ तक कि आप विवश होकर अपने जन्मस्थान मक्के को त्याग कर मदीने में जा बसे।

शत्रुओं ने मदीने में भी चैन से बैठने न दिया। अतंतः विवश होकर युद्ध के लिए तैयार होना पड़ा। कई लड़ाईयाँ हुईं, जिसमें हार सदैव अबुसुफ़ियान ही की हुई। हज़रत मुहम्मद के अनुयायियों की संख्या और उनकी शक्ति बराबर बढ़ रही थी। अंत में मक्के में एक ऐसी निर्णायक लड़ाई हुई, जिसने उमैया वंशियों की शक्ति बिलकुल तोड़ दी। अब अपनी दुर्बलता को छिपाने के लिए उन्होंने अपने चेहरे पर इस्लाम की स्वीकृति का पर्दा डाल लिया।

इस हार के बाद बहुत काल तक उमैया वंश वाले सिर न उठा सके। हज़रत मुहम्मद के दूसरे ख़लीफ़ा हज़रत उमर ने अपने शासन काल में अबूसुफ़ियान के बड़े बेटे यज़ीद को और यज़ीद की मृत्यु के बाद उसके भाई मुआविया को शाम का 'अमीर' (गवर्नर) नियुक्त किया। अमीर मुआविया के प्रयत्नों से उमैया वंशवालों

का पतन अभ्युदय के रूप में परिणत होने लगा, और धीरे धीरे वैभव और शासन फिर उनके अधिकार मे आ गया। हज़रत मुहम्मद के तीसरे ख़लीफ़ा हज़रत उसमान स्वयं उमैया के वंशधरों में से थे। उनके शासन काल में उमैया वंशियों का भलिभांति अभ्युदय हुआ।

जब हज़रत अली रसूल के चौथे ख़लीफ़ा हुए, तो हवा का रुख़ बदल गया। आप राजसी शक्ति के अतिरिक्त साधुओं के समान जीवन बिताते थे। आवश्यकता के समय यहूदियों की वाटिकाओं में पानी सींचकर अपनी जीविका अर्जन करते थे, किंतु जातीय कोष में हाथ न लगाते थे। इस कारण यह संभव न था कि कोई व्यक्ति या कोई समूह जातीय कोष से बिना अधिकार के लाभान्वित हो सके। अतः अरब के सरदारों को जो वृत्ति व्यर्थ मिल रही थी, वह सब आपने बन्द कर दी।

हज़रत अली हज़रत हाशिम के परपोते और हज़रत मुहम्मद के चचेरे भाई थे। हाशिम वंशियों का शासन यों ही उमैया वंशियों को असहय था। उस पर हज़रत अली की कठोरता। परिणाम यह हुआ कि विरोध की चिनगारियाँ दहकते दहकते युद्ध की आग भड़क उठी और उमैया वंशियों ने शाम के शासक अमीर मुआविया के नेतृत्व में हज़रत अली से कई लड़ाईयाँ लड़ीं। हज़रत अली इस्लाम के सबसे बड़े सिपाही और युद्ध कला के सबसे बड़े ज्ञाता थे, समर क्षेत्र सदैव उन्हीं के हाथों रहा। जब तीर और तलवार से उद्देश्य सिद्ध न हुआ तो छल और कूटनीति के शस्त्र चलने लगे। अंत में सन् 40 हिजरी के रमज़ान के महीने में, हज़रत अली जिस समय कूफ़े की मस्जिद में, प्रभात काल की नमाज़ में अपने उपास्य ईश्वर को सिजदा कर रहे थे, 'शहीद' (धर्मार्थ बलिदान) कर दिये गये।

हज़रत अली की शहादत से उमैया वंशियों का रास्ता थोड़ा साफ़ हो गया। किंतु हाशिम वंशी पवित्रता, आध्यात्मिकता, विद्या और सदाचरण में उमैया वंशियो से कहीं अधिक श्रेष्ठ थे, और रसूल की निकटता का गौरव भी उन्हीं को प्राप्त था, इसलिए आध्यात्मिक महत्व का हाशिम वंशियों से उमैया वंशियों मे चला जाना अब भी कठिन था। अतः हज़रत अली के बाद उनके बड़े बेटे 'हसन' रसूल के ख़लीफ़ा स्वीकार कर लिये गये।

मुआविया का वंशानुगत और निजी अनुभव बता चुका था कि हाशिम वंशियों के मुक़ाबले में तलवार उठाना व्यर्थ है। इसलिए उन्होंने इमाम हसन के पास संधि का संदेश भेजा। यह संदेश कुछ ऐसा था कि यदि आप स्वीकार न करते, तो प्रतिष्ठा प्रियता के कलंक और रक्तपात के लांछन से बचना कठिन था। संधि की शर्तें भी कठिन न थीं। निदान समय की नीति समझकर इमाम हसन ने संधि ा कर ली। अमीर मुआविया ने इस संधि के द्वारा इमाम हसन को राज्य शासन से पृथक करके संधि की शर्तों का खुल्लमखुल्ला विरोध करना आरंभ कर दिया। अंतिम सफ़र महीना सन् 49 या 50 हिजरी में इमाम हसन भी ज़हर देकर शहीद कर दिये गये।

अब अमीर मुआविया ने सुलहनामे के विरुद्ध अपने दुराचारी बेटे यज़ीद को अपना उत्तराधिकारी और मुसलमानों का धार्मिक 'पेशवा' नियुक्त करके उसके लिए बैअ़त लेना आरंभ कर दिया। इमाम हसन के छोटे भाई हुसैन से भी बैअत लेने की कामना की गई, किंतु पवित्रता और निष्पापता का सिर पतितता और पाप पररायणता के सामने कैसे झुकता?

इमाम हुसैन वस्तु अहिता, दूरदर्शिता और तत्वज्ञता में अनुपम व अद्वितीय थे। वह भूत और वर्तमान के दर्पण में भविष्य का रूप देख रहे थे। उनको निश्चय हो गया कि अब धर्म की रक्षा का केवल एक ही द्वार रह गया है अर्थात अपने प्राण और प्राणों से अधिक प्रिय व्यक्तियों का बलिदान। वह इस बलिदान के लिए तैयार हो गये और समय की प्रतीक्षा करने लगे। वह इमाम हसन के जीवन काल में ही कहा करते थे कि मैं सत्य के पक्ष में मारा जाऊँगा, परंतु मिथ्या का साथ न दूँगा। उनके इस वचन में बलिदान की तत्परता की झलक स्पष्ट दिखाई देती है।

मुआविया की मृत्यु के बाद उनका बेटा यज़ीद सिंहासन पर बैठा। मुआविया अपने जीवन ही में बहुत से लोगों से यज़ीद की बैअत ले चुके थे, इसी बिर्ते पर उसका सांसारिक शासन के साथ आध्यात्मिक नेतृत्व का भी दावा था। परंतु अधर्म के आचरण में उसका साहस इतना बढ़ा हुआ था कि उसने धार्मिक नेतृत्व के दावे के अतिरिक्त अपने दुराचारों पर दिखावे की धार्मिकता का पर्दा भी न डाला। वह इस्लाम के आदेशों के खुल्लमखुल्ला विरुद्ध आचरण करने लगा। मांस, मदिरा, राग रंग, और व्यभिचार में निःशंक होकर रत रहने लगा।

कूफ़ा वासियों ने मुआविया के जीवन काल से ही इमाम हुसैन को अपने धर्मोपदेश के लिए बुलाना शुरू कर दिया था। यज़ीद के शासन काल में तो उनके पत्रों के ढेर लग गये। यज़ीद जानता था कि लोगों के हृदय इमाम हुसैन की ओर खिंच रहे हैं। उसने राजसिंहासन पर बैठने के पहले ही साल मदीने के शासक के नाम आदेश भेजा कि जिस प्रकार संभव हो, इमाम हुसैन से बैअत ली जाय। राजकीय आज्ञा की पूर्ति का प्रयत्न किया गया। फल वही हुआ जो इस प्रकार के प्रयत्नों का इससे पहले हो चुका था। अब अपने प्राण और प्रतिष्ठा का खतरे में देखकर इमाम हुसैन मदीने से मक्के चले गये। कूफ़े वालों के पत्रों का ताँता यहाँ भी बंधा रहा। उनके अनुरोध से विवश होकर अंत में आपने कूफ़े की यात्रा का संकल्प किया। परन्तु पिछले कटु अनुभवों के कारण कूफ़े वालों पर विश्वास करना कठिन था, इसलिए आपने पहले अपने चचेरे भाई मुस्लिम को भेजा कि उनके हृदय टटोलें और वास्तविक स्थिति की सूचना दें।

अभी कोई सूचना न मिली थी कि मक्का में अपनी हत्या का षड्यंत्र देखकर इमाम हुसैन कूफ़ा की ओर चल दिये। हज का समय निकट था, सारा इस्लामी संसार मक्के की ओर खिंचा चला आ रहा था। इमाम हुसैन भी हज करने के लिए हर साल मदीने से मक्के पैदल आया करते थे। इसलिए जो लोग मार्ग में मिलते थे, वे आश्चर्य से पूछते थे कि हज के समय में आप मक्का से कहाँ और क्यों जा रहे हैं? आप उत्तर में साधारणतः कह दिया करते कि "मैं ईश्वरीय मार्ग पर प्राण उत्सर्ग करने जा रहा हूँ"। आपके इस उत्तर से भी बलिदान पर तत्परता प्रकट हो रही है।

हज़रत मुस्लिम कूफ़े पहुँच गये। कूफ़े वालों ने उनका बड़ा सम्मान किया। लोग झुंड के झुंड आने लगे। उनके हाथ पर इमाम हुसैन की बैअत करने लगे। यज़ीद को जब यह समाचार मिला, तो उसने उबैदुल्ला को, जो अत्यन्त कठोर हृदय और हज़रत मोहम्मद की संतान का शत्रु था, शाम का गर्वनर नियत करके कूफ़ा भेजा। उसने वहाँ पहुँचते ही हज़रत मुस्लिम को अत्यंत क्रूरता के साथ मरवा डाला और उनका आतिथ्य करने वाले 'हानी'को सूली पर चढ़ा दिया। कूफ़े वालो की स्वामिभक्ति में इतनी दृढ़ता कहाँ थी कि इन कठोरताओं को सहन कर सकते। अतंतः वे इमाम हुसैन से विमुख हो गये। कूफ़ा निवासियों पर अपना आंतक बिठाने के बाद ज़ियाद के बेटे ने नगर के नाके बंद करवा दिये, और हज़ार सवारों की एक सेना 'हुर' की अधीनता में इमाम हुसैन की खोज में भेज दी।

मार्ग में इमाम हुसैन को हज़रत मुस्लिम के बलिदान का समाचार मिला। परंतु आपने अपनी यात्रा स्थगित नहीं की। कई मंज़िले पार करने के बाद 'हुर' की सेना ने राह रोकी। कुछ बातचीत के बाद यह निश्चय हुआ कि इमाम हुसैन किसी अपरिचित मार्ग से यात्रा करें। गरमी प्रलय काल का दृश्य दिखा रही थी। 'हुर' की सेना की प्यास से जान निकल रही थी, और उस निर्जन बन में पानी का कोसों पता न था। इमाम हुसैन के साथ उनका परिवार, उनके आत्मीय स्वजन तथा मित्रों का एक समुदाय था, जिसमें छोटे छोटे बच्चे थी थे। किन्तु मानवीय सहानुभूति से द्रवित होकर आपने अपने साथ का पानी शत्रु की सेना को पिला दिया।

अब हुसैन की यह टोली 'हुर' के प्रस्ताव के अनुसार एक अपरिचित मार्ग से चली। हुर की सेना भी साथ हो ली। तीन चार दिन के बाद, मुहर्रम की दूसरी

तारीख़ को, यह टोली कर्बला के मैदान में पंहुच कर फ़ुरात नदी के समीप ठहर गई। दूसरे दिन उबैदुल्ला का भेजा हुआ एक लश्कर साद के पुत्र उमर के सेनापतित्व में कर्बला पंहुचा। इसके बाद यज़ीदी सेनाओं के आने का ताँता बंध गया। सारे रास्ते बंद कर दिये गये और इमाम हुसैन को उन फ़ौजों में घेरकर यज़ीद की बैअत करने को विवश किया जाने लगा। सातवीं मुहर्रम को उबैदुल्लाह के आदेश से फ़ुरात नदी पर कई हज़ार सिपाहियों का पहरा बिठा दिया गया, और इमाम हुसैन का पानी बंद कर दिया गया।

वह करूणा और सहानुभूति का स्रोत, जिसने अभी थोड़े दिन हुए अपने शत्रुओं की पूरी सेना को जल से तृप्त किया था, अब उसके नन्हें नन्हें बच्चे एक एक बूँद पानी को तरस रहे हैं। किंतु शक्ति के समस्त प्रदर्शन और कष्ट पंहुचाने के सारे प्रयत्न इमाम हुसैन को विवश न कर सके कि वह एक ईश्वर विमुख और पापिष्ठ राजा को अपना धार्मिक नेता स्वीकार कर लें। आठवीं मुहर्रम को साद के पुत्र उमर ने इमाम हुसैन से एक बार फिर कहा कि अब भी समय है, यज़ीद की बैअत कर लीजिए और सारी विपत्तियों से मुक्ति पा जाईये।

किंतु इमाम हुसैन की धीरता में अब भी अंतर न आया। आपने बैअत से इन्कार कर दिया और कहा कि मुझे लौट जाने दो ताकि मैं मक्का या मदीना में एकांतवास करूँ। यदि यह संभव न हो, तो अनुमति दो कि मैं यज़ीद के राज्य से निकल कर हिंदुस्तान या किसी और देश में जा रहूँ। यदि यह भी संभव न हो, तो मुझे यज़ीद के पास ले चलो कि मैं स्वयं उससे बातचीत कर लूँ। साद पुत्र उमर ने ये तीनों बातें उबैदुल्ला को लिख भेजीं, परन्तु उसने कोई भी बात स्वीकार न की, अपितु शिम्र को एक बड़ी सेना के साथ भेजा कि वह या तो इमाम हुसैन से यज़ीद की बैअत ले या उनका सिर ले आये।

उबैदुल्ला की यह आज्ञा इमाम हुसैन को नवीं मुहर्रम की संध्या को सुनाई गई। इमाम ने इस पर विचार करने के लिए एक रात का अवकाश लिया। सांयकाल की नमाज़ के बाद आपने अपने साथियों से फ़रमाया कि मैं यह निश्चय कर चुका हूँ कि यज़ीद की बैअत करके धर्म के विनाश में सम्मिलित न हूँगा। अब मेरा साथ देने में तुम्हारे प्राणों की आशंका है, इसलिए मैं सहर्ष अनुमति देता हूँ कि रात के पर्दे में तुम जहाँ चाहो, चले जाओ।

स्नेह और मित्रता की सीमा समाप्त हो गई थी। अब प्राणार्पण और सिर दान की समस्या थी। कुछ साथी बिदा हो गये। अब केवल वे ही लोग शेष रह गये, जो हुसैन के महान् बलिदान में सम्मिलित होने के योग्य थे। इन सिर देने वाले धर्मशूरों की संख्या बहत्तर से एक सौ दस तक बताई जाती है। जिनमें कुछ दुर्बल, बूढ़े, कुछ नवयुवक लड़के और कुछ अबोध बच्चे भी सम्मिलित थे। इनके अतिरिक्त कुछ स्त्रियाँ भी इमाम हुसैन के साथ थीं। इस चुनी हुई टोली में एक व्यक्ति भी ऐसा न था, जिसने अपने कृत्यों से हुसैन के बलिदान के महत्व और प्रभाव में अधिवृद्धि न की हो।

जब अवकाश की निशा बीत गई और इमाम हुसैन अपने संकल्प पर सुदृढ़ रहे, तो यज़ीद की विशाल सेना, जिसकी संख्या कम से कम बीस हज़ार बताई जाती है, कर्बला के मैदान में इस संकल्प से आकर खड़ी हो गईं कि दृढ़ता और पर्वत को अत्याचार और बल प्रयोग की आंधियों से विकम्पित कर दें। युद्ध के बाजे बजने लगे, इमाम हुसैन का सिर लेने की तैयारियाँ होने लगीं। इतनी बड़ी सेना का सामना है, भूख प्यास की प्रबलता से किसी के दम में दम नहीं है। बच्चे प्यास प्यास कहकर तड़प रहे हैं। अपनी और प्रियतम व्यक्तियों की मृत्यु, घर के विनाश और स्त्रियों के बंदी होने के दृश्य आखों के सामने हैं। परन्तु इमाम हुसैन की कर्तव्य परायणता, सिद्धांत पालन, सहनशीलता और साहस का क्या कहना है, आपके मस्तक पर अब भी बल न आया।

जब यज़ीद की प्रबल सेना अपनी पंक्तियाँ जमा चुकीं, तो इमाम हुसैन आगे बढ़े और अपनी कुलोचित

सुवाणी के साथ एक भाषण आरंभ किया। ईश्वर की स्तुति और रसूल के गुणगाथा के बाद आपने अपनी वंशगत श्रेष्ठता और धर्म की संकट पूर्ण दशा वर्णन की, और कूफ़ा वासियों को संबोधित करके फ़रमाया- "तुम्हीं ने मुझको सैकड़ों पत्र भेजकर धर्मोपदेश के लिए बुलाया और तुम्हीं अब मेरी हत्या के लिए प्रस्तुत खड़े हो! क्या अतिथि सत्कार की यही रीति है? और क्या धर्मोपदेशकों के साथ यही बर्ताव उचित है?" किंतु कूफ़ियों में इतना नैतिक बल कहाँ था, जो प्राण व धन के भय पर विजय पा सकते फिर भी लज्जा से उनके सिर झुक गये।

यज़ीद की इस विशाल सेना में केवल एक व्यक्ति ऐसा निकला जिसने सत्य पर मरना असत्य पूर्ण जीवन से उत्तम समझा। वह कौन था? 'हुर' वही हुर, जिसे कुछ दिन पहले इमाम हुसैन ने प्यास की व्याकुलता में जल से सिंचित करके मानों दूसरा जीवन प्रदान किया था। वह अपने साथियों को लेकर इमाम हुसैन की ओर आ गया। इमाम हुसैन का भाषण समाप्त हुआ। उत्तर में यज़ीद की सेना से तीर बरसने लगे। इमाम हुसैन ने स्वयं युद्ध न करने का संकल्प कर लिया। परंतु प्राण न्योछावर करने वाले सहायक आपको तलवारों की आँच में क्योंकर देख सकते थे। अरब की प्राचीन प्रथा के अनुसार एक एक व्यक्ति बढ़ने और अपने नेता के नाम पर प्राण न्योछावर करने लगा। सहायकों के बाद आत्मीय विदा होने लगे। नौ दस वर्ष के दो भांजे औन व मुहम्मद, तेरह चौदह वर्ष का भतीजा क़ासिम, अट्ठारह वर्ष का बेटा अली अकबर, बत्तीस वर्ष का भाई अब्बास और कुछ और निकटवर्ती प्रियजन एक एक करके गये और अलौकिक वीरता के चमत्कार दिखा दिखाकर शहीद हो गये। अब इमाम हुसैन बिलकुल अकेले रह गये। एक बेटा आबिद जीवित तो था, पंरतु बीमारी और दुर्बलता से मृतवृत हो रहा था, इस विपत्ति में पिता की सहायता किस प्रकार करता।

इमाम हुसैन विपत्तियों के जिस समूह से घिरे हुए थे, अब उसमें प्रियतम् मित्रों और निकटतम स्वजनों के वियोग के घावों की और वृद्धि हो गई थी। फिर अपनी ओर के शहीदों की लाशें उठाते उठाते और शिविर तक लाते लाते न मालूम क्या दशा हुई होगी। शत्रु सेना में घुसकर किसी का शव उठा लाना सहज न था। हज़रत जितनी लाशें समर भूमि से लाये होंगे, उतनी ही लड़ाईयाँ लड़नी पड़ी होंगी। संक्षेप में यह कि उस समय इमाम हुसैन की जो दशा होगी, उसका वर्णन कैसा? कल्पना भी नहीं हो सकती। किंतु न मालूम आपके खंड खंड हृदय में कितनी दृढ़ता और चूर चूर शरीर में कितनी शक्ति थी कि इस निरुपाय और निरालंब अवस्था में भी जब यज़ीद की सेना से युद्ध के लिए ललकार हुई तो आप युद्ध करने को उद्यंत हो गये। और उन महिलाओं से विदा होने के लिए शिविर में गये जिनकी गोद के पाले, घर के उजाले, आँखों के तारे, जीवन के सहारे इमाम पर न्योछावर हो चुके थे। किसकी लेखनी में शक्ति है कि इस वेदनापूर्ण दृश्य का चित्र खींच सके।

सबसे बिदा होकर इमाम हुसैन समर भूमि में आये और उस दुर्बलता व निराशा की अवस्था में वीरता के वो चमत्कार दिखाये जिनकी तुलना के लिए संसार के इतिहास के पन्ने कोरे हैं। एकाएक शिविर में रुदन का हाहाकर होने लगा। इमाम हुसैन लौट आये और देखा कि आपका छः महीने का प्राणप्रिय पुत्र अली असग़र प्यास की तीक्ष्णता से प्राण विसर्जन कर रहा है। हज़रत को अपनी निर्दोषिता और यज़ीदियों की क्रूरता के प्रकाश का एक बहुत अच्छा अवसर मिल गया। आपने बच्चे को अपने हाथों पर लिया और एक ऊँचे स्थान पर खड़े होकर उसकी करुणाजनक दशा शत्रुओं को दिखाई और फ़रमाया कि "यह निष्पाप बच्चा प्यास से कंठगत प्राण है, इसकी माता का दूध भी सूख गया है, यदि एक बूँद पानी इसके कंठ में टपका दो, तो इसकी जान बच जाये।"

यह ऐसा हृदय विदारक दृश्य था कि वे पाषाण हृदय भी, जिन्हें औन व मोहम्मद के बचपन, अकबर की जवानी और इमाम हुसैन का बुढ़ापा भी प्रभावित न कर

सका था, पसीज गये। कुछ लोगों ने पानी देने का संकल्प किया, किंतु साद के पुत्र उमर ने अपनी सेना के एक अभ्यस्त लक्ष्यभेदी हुरमुला को आज्ञा दी कि हुसैन की बात काट दे। हुरमुला ने एक त्रिफला तीर ताककर मारा जो बच्चे की गर्दन और बाप की बाहु तोड़कर निकल गया और बच्चा बाप के हाथों पर तड़प तड़प कर मर गया।

अपने ह्दय के टुकड़े को धरती की गोद में सुलाकर इमाम हुसैन फिर समर भूमि में आये और ऐसा युद्ध किया कि चारों ओर त्राहिमाम-त्राहिमाम का चीत्कार होने लगा। आपने तलवार रोक ली। तलवार का रुकना था कि शत्रुओं ने घेर लिया, तीरों, तलवारों और भालों की वर्षा होने लगी। फलतः सैकड़ों जख़्म खाकर आप घोड़े से गिरे और शिम्र ने अपने खंजर से हज़रत का सिर काट दिया। विजय के बाजे बजने लगे। शहीदों की लाशें घोड़ों से रौंदी गई। माल और असबाब लूटा गया। महिलाओं के सिरों से चादर तक उतार ली गई। शिविर में आग लगा दी गई। इमाम हुसैन के बीमार बेटे आबिद को बेड़ियाँ पहनाई गईं, और अरब के पवित्रतम वंश की लज्जावती महिलायें रस्सियों में बाँधकर बंदिनी बना दी गईं। यह सब दुर्घटना 10 मुहर्रम सन् 61 हिजरी को हुई।

यज़ीदियों ने अपनी ओर के मुर्दों को दफ़न किया, और इमाम हुसैन व उनके साथियों की लाशों को बेकफन और बेसमाधि छोड़कर कूच कर दिया। उन्होंने शहीदों के सिरों को भाले पर चढ़ा करके आगे रखा, अंतःपुर वासिनी महिलाओं को बे बुर्क़ा, बेचादर, ऊँटो की नंगी पीठ पर बिठाया और नकेल इमाम हुसैन के बीमार व दुर्बल बेटे आबिद के हाथ में देकर उनको काँटों से भरे रास्ते से नंगे पैर चलने को विवश किया।

वे रास्ते भर ना ना प्रकार का अपमान करते और कष्ट देते रहे। दुष्टता की सीमा यह थी कि यदि आबिद थककर बैठ जाते थे, या पैरों का काँटा निकालने के लिये ठहर जाते थे तो उनको कोड़े मारते थे। यदि महिलायें आत्मीयों के सिरों को देखकर रोती थीं तो भाले की नोंके चुभोते थे।

जब यज़ीद की राजधानी दमिश्क में पहुँचे, तो सबसे सघन बसे हुये रास्तों से अत्यंत तिरस्कार व अपमान के साथ इन बंदियों को यज़ीद के दरबार तक ले गये। यज़ीद ने भी इनके तिरस्कार में कोई कसर न रखी और सबको एक छोटे और अंधेरे मकान में कैद कर दिया।

असद वंशियों का एह समुदाय कर्बला के निकट बसा हुआ था। इस वशं के लोगों ने कई दिनों के बाद इमाम हुसैन और उनके साथियों की लाशों को दफ़न कर दिया।

इमाम हुसैन के ये कुटुम्बी एक वर्ष तक बंदी रहे। यज़ीद की पत्नी हिंदा रसूल के परिवार से प्रेम रखती थी। उसको जब इन घटनाओं का पता मिला, तो उसकी सिफ़ारिश पर यज़ीद ने इन अनाथों को मुक्त करके मदीने पहुँचा दिया।

सत्य के पक्षपात और सिद्धांत के लिए बहुधा बलिदान किये गये हैं, किंतु जो बलिदान इमाम हुसैन ने किया, उसकी उपमा संसार का इतिहास उपस्थित नहीं कर सकता। इमाम हुसैन के बलिदान ने दिलों को बदल दिया और विचारों में क्राँति उत्पन्न कर दी।

इस घटना से पहले किस की मजाल थी कि यज़ीद के दरबार में इमाम हुसैन का नाम सम्मान के साथ ले सके, किंतु इस घटना के बाद उसके मुंह पर इमाम हुसैन की प्रशंसा होती थी, और वह मौन रह कर सुनता था। यही नहीं वरन् हुसैन की हत्या का कंलक प्रायः अपने नौकरों पर रखकर वह स्वयं भी शोक और पश्चताप का प्रकाश किया करता था। यज़ीद के बाद उसका बेटा राज्य का अधिकारी हुआ, किंतु वह अपने पिता के कर्मों से इतना लज्जित था कि थोड़े दिनों में राज्य त्यागकर घर में मुहँ छिपाकर बैठ गया।

इसी बलिदान का प्रभाव था कि लोगों के दिल यज़ीद से फिर गये। यहाँ तक कि उसका साम्राज्य थोड़े ही समय में संसार से मिट कर इतिहास के पन्नों पर धब्बा बन कर रह गया। और हुसैन के हत्यारों का नाम ऐसा मिटा कि आज एक व्यक्ति भी उनके वंश में शेष नही है। या यूँ कहिये कि इस घटना के वह लोग

ऐसे तिरस्कृत हुए कि सारे संसार में एक मनुष्य भी अपने वंश का नाता उनके साथ जोड़ना पसंद नहीं करता। दूसरी ओर वही हुसैन जिनके साथ कर्बला के युद्ध में गिनती के थोड़े से आदमी थी, आज उनके नाम पर प्राण न्योछावर करने वाले करोड़ों की संख्यां में विद्यमान हैं और जिनकी संतति में केवल एक आबिद शेष रह गये थे, आज लाखों सैय्यद उनका वंशधर होने का गर्व करते हैं।

जो लोग अनजान से कर्बला की घटना को दो प्रतिपक्षियों का सामान्य युद्ध समझते हैं या जो हत्या और विजय को समानार्थक शब्द विचार करते हैं, वे कदाचित् हत्यारे यज़ीद को विजेता और आहत हुसैन को विजित समझें, किंतु जो लोग इमाम हुसैन के बलिदान को सत्य के पक्ष में एक महान बलिदान समझते हैं वे इस भ्रम में फंस नहीं सकते। इसके अतिरिक्त यदि यज़ीद और इमाम हुसैन के उद्‌देश्य पर दृष्टि डालें और सफलता को उद्‌देश्य की सिद्धि से पृथक कोई वस्तु न समझें, तो इमाम हुसैन को विजेता और यज़ीद को हारा हुआ मानना पड़ेगा।

यज़ीद का उद्‌देश्य क्या था?

यही कि आध्यात्मिकता के एकमात्र ध्वजाधारण करने वाले और हाशिम वंशियों की आध्यात्मिक महत्ता के सबसे बड़े प्रतिनिधी की हत्या करके सांसारिक राज्य के साथ आध्यात्मिकता और धार्मिकता के साम्राज्य पर भी अनुशासन करे। और इमाम हुसैन का उद्‌देश्य क्या था? यही कि धर्म के सिद्धांतों को यज़ीद के हाथों से नष्ट न होने दें, और यज़ीद के कुकर्मों को प्रकट करके संसार की दृष्टि से यज़ीद के मार्ग को घृणित बना दें। क्या कर्बला की घअनाओं के परिणामों पर दृष्टिपात करने के बाद कोई कह सकता है कि यज़ीद को विजय और इमाम हुसैन को पराजय हुई?

निःसंदेह यज़ीद ने इमाम हुसैन की हत्या की,
किंतु इससे स्वयं उसके राज्य की हत्या हो गई।
हुसैन की लाश पर घोड़े दौड़ाये,
किंतु इससे स्वयं उसका अधिकार पद दलित हो गया।
हुसैन के शव को बेदफ़न छोड़ दिया,
किंतु इससे स्वयं उसकी महत्ता दफ़न हो गई।
हुसैन का माल असबाब लूट लिया,
किंतु इससे स्वयं उसकी रक्षित पूंजी लुट गई।
हुसैन की घर वालियों को बेपर्दा किया,
किंतु इससे स्वयं उसीकी निर्लज्जता का पर्दा उठ गया।
हुसैन के सिर को भाले पर ऊँचा किया,
किंतु इससे स्वयं उसकी उच्चता मिट्‌टी में मिल गई।

हुसैन और हुसैन के पक्षपातियों के तिरस्कार के प्रत्येक प्रयत्न ने यज़ीदपन की जड़ें काट दीं। हुसैन और हुसैन के साथियों के मिटाने की प्रत्येक चेष्टा ने यज़ीदपन को पतन और मृत्यु की सीमा के निकट और निकटतर कर दिया। ज्यों-ज्यों अत्याचार हुसैन पर किये गये, उनसे यज़ीदियों की दुष्टता प्रत्यक्ष होती गई और हुसैनी सदाचाद के जौहर खुलते गये। अंत में कर्मों की साक्षी ने, जो बचनों से कहीं अधिक विश्वासदायक होती है, यज़ीदियत के प्रति घृणा और हुसैनियत की महत्ता प्रत्येक ह्दय में जमा दी। यही हुसैन का उद्‌देश्य था।

हुसैन और यज़ीद का युद्ध

सत्य और मिथ्या का युद्ध था,
जिसमें सत्य की जय हुई।
धैर्य और अत्याचार का युद्ध था,
जिसमें धैर्य सफल हुआ।
धर्म और अधर्म का युद्ध था,
जिसमें धर्म की विजय हुई।
मनुष्यता और पशुता का युद्ध था,
जिसमें मैदान मनुष्यता के हाथ रहा।

तात्पर्य यह कि कर्बला का युद्ध एक विचित्र युद्ध था, जिसमें दिखावटी विजय वस्तुतः हार और प्रत्यक्ष पराजय आंतरिक विजय थी।

यह है कर्बला की घटना का सादा सा शब्द चित्र, जिससे उसके महत्व का थोड़ा सा आभाव हो जायेगा। किंतु इस घटना की वास्तविक महिमा तो इसके विवरण में निहित है। जिन लोगों ने इसके अंश पर भी गंभीर दृष्टि डाली है और इमाम हुसैन के चरित्र का मनोयोग से अध्ययन किया है, उनके निकट हुसैन शब्द एक चित्रावली हैं जिसमें सर्वोत्तम मानवीय गुणों के अनुबंध और अविनाशी चित्र दृष्टिगोचर होते हैं।

